Jan 2021 - Mar 2021, Vol 7, No. 1, 08-15 ISSN : 2394 -9449

Electronic Journal of Advanced Research

An International Peer review E-Journal of Advanced Research

Research Articles

मुगल शासन प्रणाली में मनसबदारी प्रथा एवं जागीरदारी व्यवस्था –एक ऐतिहासिक अध्ययन

अजय शंकर पाण्डेय[1]

1- शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

Received : 01-Feb-2021	Revised : 05-Mar-2021	Accepted : 08-Mar-2021

शोध सारांश

'मनसबदार' का शब्द पदाधिकारी के लिए प्रयोग किया जाता था और इस पूरी व्यवस्था को मनसबदारी प्रथा कहा जाता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अकबर के शासन के तीन प्रमुख अंगों को अर्थात सामंत, सेना एवं नौकरशाही को एक सामान्य व्यवस्था में संगठित कर दिया था। मनसब अथवा पद का निर्धारण अंकों के माध्यम से होता था।

प्रस्तावना

'मनसबदार' का शब्द पदाधिकारी के लिए प्रयोग किया जाता था और इस पूरी व्यवस्था को मनसबदारी प्रथा कहा जाता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अकबर के शासन के तीन प्रमुख अंगों को अर्थात सामंत, सेना एवं नौकरशाही को एक सामान्य व्यवस्था में संगठित कर दिया था। मनसब अथवा पद का निर्धारण अंकों के माध्यम से होता था। ये अंक दशमलव पद्धति पर आधारित थे। न्यूनतम मनसब का अंक 10 था और अधिकतम 10,000 परन्तु सामान्यतः नियुक्तियाँ केवल 5000 के ही मनसब तक ही की जाती थीं। केवल विशेष व्यक्तियों को अकबर द्वारा 7000 तक मनसब दिए गए। अकबर के पश्चात् इस संख्या में वृद्धि हुई और शाहजहाँ ने दारा शिकोह को 40,000 का मनसब प्रदान किया। आरंभ में अकबर द्वारा मनसब में केवल एकल अंक प्रदान किये जाते थे। इससे अधिकारी का पदक्रम, वेतनमान और सैनिक दायित्व सभी का निर्धारण होता था। कुछ वर्ष बाद संभवतः 1592 में अकबर ने मनसब को युगल अंकों में परिवर्तित कर दिया जो क्रमशः जात और सवार मनसब कहलाया। अब अधिकारियों को मनसब में युगल अंक प्रदान किये जाते थे जैसे – 5000/5000 अथवा 2000/1000 आदि। इसमें जोड़े का पहला

अंक 'जात' मनसब कहलाता था और दूसरा अंक 'सवार' मनसब । (5000 जात 5000 सवार)। जात मनसब द्वारा किसी व्यक्ति का अधिकारियों के बीच स्थान या उसकी वरीयता का निर्धारण होता था। इसी के अनुसार उसका वेतन भी निर्धारित होता था। सवार मनसब द्वारा किसी व्यक्ति के सैनिक दायित्व का निर्धारण होता था, अर्थात उसके अधीन सैनिकों की संख्या का निर्धारण होता था। जात और सवार मनसब के बीच अनुपात भी निर्धारित था। यह संख्या या तो जात मनसब के बराबर या उसकी आधी या उसकी आधी से भी कम होती थी। इसी आधार पर मनसबदारों की श्रेणियाँ निर्धारित होती थीं। एक समान जात मनसब पर काम करने वाले सभी अधिकारी एक ही वर्ग में रखे जाते थे। प्रत्येक वर्ग में तीन श्रेणियाँ होती थीं। यदि जात और सवार मनसब बराबर थे तो मनसबदार प्रथम श्रेणी में था। अगर सवार मनसब, जात मनसब का आधा था तो मनसबदार द्वितीय श्रेणी में था और यदि सवार मनसब जाति मनसब के आधे से भी कम का था तो मनसब तृतीय श्रेणी का होता था। केवल विशेष परिस्थितियों में जात् मनसब से अधिक संख्या सवार मनसब में दी जाती थी। इसे 'मशरूत मनसब' कहते थे और आवश्यकता समाप्त होने पर यह वृद्धि भी समाप्त कर दी जाती थी।

कुल मिलाकर मनसबदारों के 33 वर्ग और 99 श्रेणियाँ थीं। ये पद वंशानुगत नहीं थे बल्कि हर व्यक्ति निम्नस्तर पर नियुक्ति पाने के पश्चात् अपनी योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार पदोन्नति पाता था। मनसबदारों की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी, जबकि नियुक्ति के लिए उम्मीदवार व्यक्ति को मीर बख्शी सम्राट् के सम्मुख प्रस्तुत करता था। पदोन्नति की स्थिति में मनसबदार के जात मनसब में वृद्धि की जाती थी जिससे कि उसका वेतन भी बढ़ जाता था। अयोग्यता के कारण सजा के रूप में जात मनसब में कमी भी की जा सकती थी, लेकिन सामान्यतः ऐसा नहीं किया जाता था।

हर मनसबदार को सैनिक और असैनिक दोनों ही कार्य करने पड़ते थे। इसलिए पर अधिकारी को निर्धारित संख्या में सैनिक अपने अधीन रखने पड़ते थे। अकबर ने सेना की कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए 'दहबिस्ती' (10–20) का नियम निर्धारित कर दिया था, जिसके अनुसार प्रत्येक दस सैनिक पर बीस घोड़े अनिवार्य रूप से रखते थे ताकि आवश्यकता पड़ने पर सैनिक के लिए ताजमहल घोड़े उपलब्ध रहें। इसी के साथ 1579 में ''दाग'' और ''तसहीहा'' (चेहरा) का नियम भी लागू किया। जिसके अन्तर्गत घोड़े पर शाही मोहर का चिन्ह लगा दिया जाता था। और सैनिकों का हुलिया लिख लिया जाता था। समय–समय पर निरीक्षण द्वारा यह निर्धारित किया जाता था कि प्रत्येक मनसबदार अपने सैनिकों को कार्यकुशल अवस्था में ठीक

ढंग से बनाए रखता है या नहीं। यह निरीक्षण बख्शी द्वारा किया जाता था और उसी की अनुशंसा पर वेतन प्रदान किया जाता था। अपनी निर्धारित संख्या के अनुसार सैनिक और घोड़े के अतिरिक्त मनसबदारों को कुछ अन्य घोड़े, हाथी और सामान ढोने वाले जानवर भी रखने पड़ते थे, जिसके लिए उन्हें अलग से भत्ता दिया जाता था।

अकबर की मृत्यु के पश्चात् मनसबदारी प्रथा में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन इसके उत्तराधिकारियों ने किए। जहाँगीर ने दो अस्पा सि अस्पा मनसब प्रदान करना आरम्भ किया। इसके अन्तर्गत सवार मनसब के निर्धारित अंक में वृद्धि किए बिना उसके अधीन सैनिकों की संख्या में वृद्धि की जाती थी। अतः जिस मनसबदार को दो अस्पा सि अस्पा मनसब प्रदान किया जाता था वह निर्धारित अंक से दुगुनी संख्या में सैनिक रखता था। इस व्यवस्था से लाभ यह हुआ कि मनसबदार के वेतन और उसके जात मनसब में वृद्धि किए बिना ही सैनिकों की संख्या में वृद्धि संभव हुई। शाहजहाँ के समय में एक अन्य परिवर्तन आया जिससे कि सवारों की निर्धारित संख्या में कमी की अनुमति सम्राट द्वारा दी गई। इसे मासिक वेतन कहा जाता था। इसके अन्तर्गत किसी मनसबदार को यदि उसके पूरे साल की अवधि का वेतन नहीं मिलता था बल्कि कुछ महीनों का ही वेतन मिल पाता था तो उसे यह अनुमति भी दी जाती थी कि उसी अनुपात में अपने सैनिकों की संख्या में कमी कर ले। उदाहरण के लिए जिस मनसबदार को आधा वेतन मिलता था अथवा 6 महीनों का वेतन मिलता था वह अपने सैनिकों में 50 प्रतिशत की कमी कर सकता था। यह व्यवस्था जागीरदारी प्रथा के संकट के कारण आरम्भ हुई।

मनसबदारी प्रथा एक विशिष्ट व्यवस्था थी और मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का मेरुदंड। ऐसा कहा जाता है कि जबतक यह व्यवस्था ठीक ढंग से कार्य करती रही इससे मुगल–साम्राज्य को अनेक प्रकार से लाभ प्राप्त हुए। सर्वप्रथम इससे सारे राज्य में प्रशासनिक व्यवस्था में एकरूपता आई, जिससे कि राजनैतिक एकीकरण का कमा आसान हो गया। द्वितीय इससे जातीय एवं सामंती प्रवृतियाँ कमजोर पड़ीं। राजपूतों के अतिरिक्त प्रत्येक मनसबदार को अनिवार्य रूप से अपने सैनिकों में विभिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों के सैनिकों को रखना पड़ता था जिसके कारण इनके बीच सहयोग की भावना बढ़ी और धर्म, जाति अथवा क्षेत्र के अपितु सम्राट के प्रति स्वामिभक्ति की भावना प्रबल हुई। तृतीय इस व्यवस्था से सामंत वर्ग पर सम्राट का नियत्रंण निश्चित रूप से स्थापित हो गया। अब सामन्त शासक वर्ग के अभिन्न अंगों के रूप में नहीं रहे बल्कि मनसबदारों के रूप में उनकी स्थिति अन्य प्रशासकों के समान हो गई। जो निश्चित वेतन

और सेवा शर्तों के अनुसार साम्राज्य का प्रशासन चलाते थे। इससे शासक की शक्तियों में वृद्धि हुई और राजतंत्र की सत्ता सुदृढ़ हुई।

इन सबके अतिरिक्त इस व्यवस्था से क्षमता के अनुसार हर व्यक्ति को प्रशासनिक एवं सैनिक कार्यों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। यह भी निश्चित हो गया कि वंश एवं कुल के अपितु योग्यता के आधार पर ही कोई व्यक्ति पदोन्नति प्राप्त कर सकता है। इससे साम्राज्य को योग्य प्रशासकों एवं सेनानायाकों की सेवा उपलब्ध हो सकी।

मनसबदारी प्रथा में कुछ दोष भी थे। ये अति केन्द्रीयकृत थी और इसकी कार्य क्षमता पूरी तरह सम्राट के व्यक्तित्व पर निर्भर करती थी। जहाँ योग्य एवं कुशल प्रशासकों द्वारा इस प्रणाली को लाभदायक रूप से प्रयोग किया जा सकता था। वहीं कमजोर एवं अनुभवहीन शासकों के समय इस व्यवस्था का ढंग से काम करना संभव नहीं रहा। औरंगजेब की मृत्यु के उपरांत कमजोर शासकों के समय में इस व्यवस्था की त्रुटियाँ स्पष्ट हो गईं। इस व्यवस्था में विभिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों का समागम था। शक्तिशाली शासकों द्वारा इनके बीच एकता और सहयोग बना रहा परंतु कमजोर एवं अनुभवहीन शासकों के समय यह परस्पर विरोधी तत्व एक–दूसरे के विरूद्ध संघर्षरत हो गए जिससे प्रशासन की एकाग्रता को बनाए रखना कठिन हो गया और साम्राज्य का पतन अवश्यंभावी हो गया। इस प्रकार मंसबदारी व्यवस्था सही नेतृत्व में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोग संस्था थी जिसने मुगल साम्राज्य में एकता और सुव्यवस्था बनाए रखने में निर्णायक भूमिका निभाई। लेकिन जब यह व्यवस्था कमजोर पड़ गई तो फिर साम्राज्य का अस्तित्व भी बनाए रखना संभव नहीं रहा।

जागीरदारी व्यवस्था

जागीरें अनेक प्रकार की होती थीं। सामान्यतः जागीरदारों को वेतन आदि के भुगतान के लिए जो जागीरें प्रदान की जाती थीं, उन्हें तनख्वाह जागीर कहते थे। इनमें भूमि पर स्वामित्व शामिल नहीं था, प्रशासनिक नियंत्रण भी सीमित था और यह जागीरें वंशानुगत भी नहीं होती थीं बल्कि इनके अधिकारियों का सामान्यतः प्रत्येक तीन–चार वर्षों में स्थानान्तरण कर दिया जाता था। इसके विपरीत वतन जागीरें थीं जो वंशानुगत होती थीं। अतः इनके अधिकारियों का स्थानान्तरण भी नहीं होता था। ऐसी जागीरें सामान्यतः अधीनस्थ शासकों के राज्य पर आधारित होती थीं। अतः इनमें प्रशासनिक नियंत्रण और भू–स्वामित्व भी उस शासक का होता था। आरंभ में यह वतन जागीरें अकबर ने केवल राजपूत शासकों को प्रदान की थीं। बाद में अन्य वंशानुगत शासकों को भी वतन अनुदान मिलने लगे। एक अन्य श्रेणी पुरस्काररूपी जागीरों की थी जिन्हें

इनाम जागीर या अलतम्गा जागीर कहते थे। ऐसी जागीरें वेतन के रूप में नहीं होती थीं और ना ही इनके मालिकों को प्रशासनिक दायित्व दिये जाते थे। जहाँगीर ने ऐसी ही जीगीरों को वंशानुगत अनुदानों में परिवर्तित कर दिया। ऐसे अनुदान अल्तून तम्गा कहलाते थे और सम्राट की स्वर्णिम मुहर के साथ प्रदान किये जाते थे। विशेष परिस्थितियों में मशरूत जागीरें भी प्रदान की जाती थीं।

आवश्यकतानुसार जागीर भूमि को खालिसा में परिवर्तित किया जा सकता था। ऐसी जागीर भूमि जो अस्थायी रूप से केन्द्रीय प्रशासन क अधीन कर ली जाती थी, पैबाकी कहलाती थी। आवश्यकतानुसार इसी पैबाकी भूमि का उपयोग नयी जागीरें प्रदान करने या प्रदत्त जागीरों के क्षेत्रों में विस्तार के लिए किया जाता था।

जागीर की आमदनी में मुख्यतः लगान, व्यापारिक चुंगी, घाट और पत्तनों पर लगनेवाली चुंगी एवं अन्य विविध उपकर शामिल थे जो सैर–जिह्वात कहलाते थे। इस समस्त आमदनी की अनुमानित राशि को जमादामी कहते थे, जबकि जागीर से प्राप्त वास्तविक आमदनी को हासिलदामी कहते थे। सामान्यतः दोनों में कुछ अंतर होता था, मगर अकबर के बाद यह अंतर निरंतर बढ़ता गया और इसके कारण जागीरदारी व्यवस्था में संकट उत्पन्न हुआ।

नियमतः जागीरदारों को अपनी जागीर से उन्हीं करों की वसूली की अनुमति थी जिसका अधिकार सम्राट ने उन्हें दिया था। इसके लिए केन्द्रीय अधिकारी और उनके अधीनस्थ स्थानीय पदाधिकारी जागीरदारों पर निगरानी रखते थे। जागीरदारों को किसानों के शोषण की अनुमति कदाचित नहीं थी बल्कि उन्हें अपनी जागीर के विकास और कृषि की प्रगति के लिए निरंतर सतक्र और प्रयासशील रहना पड़ता था। इसके लिए उन्हें आवश्यक धन भी उपलब्ध कराया जाता था। कुप्रशासन की स्थिति में जागीरों को सम्राट द्वारा छीना भी जा सकता था, यद्यपि ऐसा सामान्यतः नहीं होता था।

सम्पति अधिग्रहण

मुगल जागीरदार अधिकतर अपना वेतन राज्य से अग्रिम भुगतान के रूप में प्राप्त कर लेते थे। अक्सर उनपर राज्य का ऋण भी होता था। अतः किसी सामंत की मृत्यु हो जाने पर उसकी चल या अचल सम्पति सम्राट द्वारा जब्त या अधिग्रहित कर ली जाती थी। तत्पश्चात उसके जिम्मे बकाया राशि उस सम्पति से काट ली जाती थी और शेषराशि उसके उत्तराधिकारी को सौंप दी जाती थी। केवल उन सामंतों की सम्पति राजकोष में स्थायी रूप से जमा कर ली जाती थी जिनका कोई उत्तराधिकारी नहीं होता था।

सैन्य संगठन

मुगल साम्राज्य की शक्ति का मुख्य स्त्रोत उसकी सेना थी, जैसा कि मध्यकालीन और प्राचीन इतिहास में प्रायः रहा है। अतः सैन्य संगठन को सुसंगठित और कार्यकुशल बनाए रखने में सभी शासकों ने ध्यान दिया। इस दिशा में अकबर ने पहले पहल उपाए किए। उसने मनसबदारी प्रथा के माध्यम से सेना को सुसंगठित किया।

मुगल सेना का मुख्य अंग अश्वारोही अथवा घुड़सवार सेना थी। इसे रखने का दायित्व मनसबदारों का था परन्तु इसके नियम और कानून केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित होते थे और मनसबदारों को इनका कड़ाई के साथ पालन करना पड़ता था। मनसबदारों की सेना के अतिरिक्त सम्राट द्वारा निजी रूप से भी सैनिक रखे जाते थे, जो ''अहदी'' कहलाते थे। इन्हें आम सैनिकों की तुलना में अधिक वेतन मिलता था और ये सामान्यतः सम्राट के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहते थे। ये संदेशवाहकों के रूप में भी कार्य करते थे और तीर एवं बन्दूक चलाने में भी इनकी सेवा प्राप्त की जाती थी। अहदियों के अतिरिक्त सम्राट के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में अन्य सैनिक भी रहते थे, जो ''वालाशाही'' कहलाते थे। ये आमतौर पर शाही दरबार में अंगरक्षकों के रूप में कार्य करते थे।

एक अन्य श्रेणी पैदल सैनिकों की थी, जो पियादे कहलाती थी। आमतौर पर ये बन्दूक चलाते थे, लेकिन इनमें तलवार चलाने वाले, धावक, संदेशवाहक और अन्य सैनिक भी शामिल थे। मुगल सेना में हाथियों का प्रयोग भी सामान्य रूप से होता था। अकबर के समय में कई महत्वपूर्ण युद्धों में हाथियों के प्रयोग का वर्णन मिलता है। इन हाथियों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था और इनका उपयोग विरोधी सेना की पंक्तियों को तोड़ने के लिए किया जाता था। किले की दीवारों को तोड़ने और युद्ध में तोप आदि खींचने में भी हाथियों का प्रयोग होता था।

मुगल सेना की उल्लेखनीय विशेषता तोपखाने के रूप में देखी जा सकती है। बाबर द्वारा पानीपत की पहली लड़ाई में तोप के प्रयोग के बाद भारतीय सैनिक पद्धति में तोप का अनिवार्य महत्व बन गया था। मुगल शासकों द्वारा तोपखाने को अलग विभाग के रूप में रखा गया था और इसका प्रधान ''मीर आतिश'' कहलाता था। तोपें अनेक प्रकार की होती थीं, लेकिन अधिकतर उपयोगी तोपें बड़ी और भारी होती थीं, जिनके कारण भौगोलिक कठिनाइयों वाले क्षेत्रों में इनका प्रयोग कठिन हो जाता था। मुगल सेना में तोपखाने का विकास पर्याप्त ढंग से नहीं हो सका और यह माना जा सकता है कि मुगल शासकों का तोपखान न केवल यूरोपीय देशों बल्कि समकालीन ईरानी शासकों के तोपखानों से कमजोर था।

मुगलों ने नौसेना के विकास में भी अभिरुचि दिखाई और काफी बड़ी संख्या में जहाजों और नौकाओं का उपयोग मुगलों द्वारा किया गया। मगर यहाँ भी मुगलों की व्यवस्था त्रुटिपूर्ण बनी रही। जहाजों का उपयोग सैनिकों को लाने–ले–जोने में सहायक सिद्ध हुआ, जबकि युद्ध के कार्य में इनका प्रयोग सफल ढंग से नहीं किया जा सका क्योंकि इन जहाजों पर तोप लादने या इनसे तोप द्वारा प्रहार करने की सुविधा मुगल शासक विकसित नहीं कर पाए। अनेक इतिहासकार मुगलों की सैन्य व्यवस्था की कमजोरियों को मुगल साम्राज्य के पतन में एक निर्णायक कारण के रूप में देखते हैं। यह बात भी इतिहासकारों द्वारा महत्वपूर्ण मानी जाती है कि मुगलों ने पैदल सेना के विकास में उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त की। अनुशासन, प्रशिक्षण और नेतृत्व के मामलों में भी मुगलों की पैदल सेना समकालीन यूरोपीय पैदल सेनाओं से काफी पिछड़ी हुई थी। अतः युद्धों में इसकी सफलता संदिग्ध थी।

निष्कर्ष

मुगल शासन प्रणाली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता मनसबदारी प्रथा एवं जागीरदारी व्यवस्था थी। इसका निर्माता अकबर था, और इसके विकास में उसने अंशिक रूप से मंगोल और तैमूरी परम्पराओं का प्रभाव भी ग्रहण किया था। ''मनसब'' फारसी भाषा का शब्द है जिनका अर्थ होता है 'पद'। जागीरदारी व्यवस्था का मंसबदारी प्रथा से घनिष्ट संबंध था। उच्चवर्गीय मंसबदारों को वेतन एवं अन्य प्रशासनिक कोष के भुगतान के लिए जागीरों का आवंटन किया जाता था। जागीर एक निश्चित भूखण्ड थी जहाँ से जागीरदार को लगान एवं अन्य करों की वसूली अधिकार होता था। इसी धन से वह अपना वेतन और अन्य प्रशासनिक खर्च प्राप्त करता था। यह स्मरणीय है कि जागीर में भूमि का आवंटन केवल इस सीमित अर्थ में होता था कि उस भूमि

से लगान की वसूली जागीरदार कर सकता था। अन्यत्र भूमि पर उसको निजी स्वामित्व नहीं प्राप्त होता था।

संदर्भ

- संपादक–हरीशचंद्र वर्मा–मध्यकालीन भारत, भाग–2 (1540–1761), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- इमज्याज अहमद–मध्यकालीन भारत–एक सर्वेक्षण, पनिका प्रकाशन, आगरा
- सौरभ चौबे–मध्यकालीन भारत, युनिवर्सल बुक्स, अल्लापुर, प्रयागराज
- डॉ. हुकम चन्द जैन–मध्यकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (1526–1761), जैन प्रकाशन मंदिर, जयपुर
- जे.एल. मेहता–मध्यकालीन भारत का बृहत् इतिहास, खण्ड–2, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
- डॉ. एम.पी. श्रीवास्तव–मध्यकालीन भारत में प्रशासनिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन, शेखर प्रकाशन, प्रयागराज

❑❑